ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-11* December (Supplementary Issue)-2017
Innovation The Research Concept

बाल श्रम और मानव अधिकार

मीनाक्षी शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर,
राजनीतिक शास्त्र विभाग,
गोकुल दास गर्ल्स डिग्री कॉलेज,
मुरादाबाद

सारांश

मानव अधिकार मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है। मानव होने के नाते मानव को जन्म लेते ही स्वतः ही कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते है। जिन्हें मूल या मौलिक भी कहा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र या राज्य की सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह व्यक्ति को समाज में सम्मान व सुरक्षा के साथ जीवन–यापन करने के अवसर प्रदान करें। संयुक्त राष्ट्र की मानव अधिकार घोषणा के आधार पर सभी देशों के सभी व्यक्तियों को कम से कम 30 प्रकार के अधिकार मिले हुये हैं। इन अधिकारों को इन मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं– प्रथम भाग में मानव को आर्थिक अधिकार दिये गये हैं, जि के अधिकार के साथ ही राष्ट्रता, गोपनीय, चुनाव और शासन मे साझेदारी या भागीदारी का भी अधिकार दिया गया है। वह दासता एवं दबाव के आधार पर श्रम शोषण को भी नकारता हैं तीसरे भाग में मानव के वे सामाजिक व संस्कृतिक अधिकार आते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा पाने व समाज की सांस्कृतिक गतिविधियों में बिना भेदभाव के भाग लेने के लिये प्रदान किये गये हैं।

मुख्य शब्द : जन्मसिद्ध, मौलिक, राष्ट्र, उत्तरदायित्व, जीवन–यापन, उल्लेख।

प्रस्तावना

मानव अधिकार व्यक्ति के वे अधिकार हैं, जो हमारी प्रकृति में अर्न्तर्निहित हैं, इनके अभाव में न तो व्यक्ति अपना सही रूप में जीवन–यापन और न ही अपनी निहित प्रतिभा का विकास कर सकता है। भारतीय संविधान में मानव अधिकारों का बड़ा भण्डार है, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण जीने के अधिकार हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं से लेकर समानता एवं सुरक्षा की बात की गयी हैं। भारत में स्थापित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग राज्य मानव अधिकार आयोग मानव अधिकार न्यायलयों का सृजन मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम, 1993 के तहत किया गया है, ताकि मानव अधिकारों को बेहतर रूप में सुरक्षा प्रदान की जा सकें। इसके बावजूद परिकल्पना की कसौटी में मानव अधिकार अभी भी पूरा तरह खरे नहीं उतर पायें हैं, क्योंकि हमारे देश की बढ़ती निरन्तर जनसख्या और अशिक्षा इसका सबसे बड़ा अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं।

मानव को बिना किसी भेदभाव के उसके मूलभूत अधिकार दिलाने के उद्देश्य से ही संयुक्त राष्ट्र संघ के सभी सदस्यो ने मतैक्य से 10 दिसम्बर, 1948 को एक प्रस्ताव पास कर मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र स्वीकार किया। इस घोषणा के तहत विश्व के प्रत्येक व्यक्ति को एक गरिमामय शांत सफल एवं विकसित जीवन जीने से संबंधित सभी अधिकार प्रदान करने एवं अधिकारों की रक्षा का संकल्प लिया गया संयुक्त राष्ट्र संघ को मानव अधिकारों की घोषणा के 55 वर्ष बीत चुके है। वर्तमान वैश्विक स्थिति के अवलोकन एवं विश्लेषण के बाद यह कहना गलत नहीं होगा कि मानव अधिकारों की सुरक्षा का संकल्प अपने वास्तविक लक्ष्य से अभी भी कोसों दूर है। विश्व में आर्थिक व्यवस्था का साम्राज्य स्थापित करने के लिये भयंकर मारामारी चल रही है, जिसमें मानव अधिकारों का कहीं नामोनिशान नहीं दिखाई देता है। वास्तव में इस दौड़ ने मानव अधिकारों को गौण बना दिया है।

भारत सरकार ने मानव अधिकारों के प्रति अपनी वचन–बद्धता व नैतिक कर्त्तव्यों को निभाते हुय अक्टूबर 1993 में देश में राष्ट्रीय मानव–अधिकार आयोग का गठन किया और विभिन्न राज्यों में भी 'राज्य मानव अधिकार आयोगों' को गठन कर इस व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ एवं संगठित बनाने का प्रयास किया है। हमारे देश में विशेष रूप से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों से वंचित रहे लोगों, बच्चों, महिलाओं, वृद्धो, विकंलागों एवं पिछड़े वर्ग के लागों को समानता के सिद्धांत के आधार पर उनके सभी अधिकारों की सुरक्षा

हेतु सरकार द्वारा समय–समय पर संविधान सम्मत विभिन्न कानून बनाये गये और उनका अनुपालन सुनिश्चित करने के लिये प्रशासनिक प्रयत्न भी किये हैं। समाज के शोषित एवं कमजोर वर्ग के कल्याण एवं सुरक्षा बनाये रखने के निमित भारत सरकार ने विभिन्न आयोगों का भी गठन किया। यथा संविधान के 65 वें संशोधन अधिनियम 1990 के तहत 'राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग 1992 में' राष्ट्रीय पिछ़डा आयोग' का गठन किया।

मानव अधिकारों की रक्षा हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनाये गये अनेक कानूनों व नियमों के बावजूद आज भी मानव अधिकारों की रक्षा एक गंभीर चुनौती बनाती जा रही है। कानूनो एवं नियमों को गंभीरता से सोचने एवं विचारने का ही अब समय निकट ही नही आ गया है, बल्कि इसको अब अमल करने की भी आवश्यकता है। इस समय सम्पूर्ण राष्ट्र मानव अधिकारों के संदर्भ में अत्यन्त जटिलता और विविधता का सामना कर रहा है। भारत के नागरिकों के जो मूल अधिकार संविधान ने प्रदान किये है, उन अधिकारों का संवर्धन हो, वे सुरक्षित रहें, ऐसा वातावरण सम्पूर्ण राष्ट्र में बनानी ही चाहिए। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भारत के आम आदमी को गरीबी की रेखा से ऊपर उठाने के लिये अनेक वृहत् एवं समिति योजनायें समय–समय पर बनायी गयी और आज भी बनायी जा रही हैं, किन्तु इसके बावजूद गरीबी की मान्य सीमा रेखा से भी निचली सतह पर जीवन जीने को विवश लोगों की संख्या यहा कम नहीं हो सकी है। गरीबी के इस अभिशाप से आज भी मानवता त्रस्त है। मानव अधिकारों के प्रारूप को साकार बनाने में एक बड़ी बाधा गरीबी भी है। यह बच्चों का बचपन, युवकों का यौवन, जीवन कारंग और हर उस चेहरे की मुस्कान छीन लेती है, जो हंस खेल कर अपना जीवन जीना चाहते हैं। इतना ही नहीं कई बार अकाल मृत्यु का एक बड़ा कारण भी बन जाती है। निःसंदेह यह एक अन्तन्त दुःखद स्थिति है। मानव अधिकार और अन्तोदय की बढ़–चढ़कर बातें करने वाले हमारे देश एवं मानवता के लिये अपमानजनक भी हैं। बाल श्रमिक समस्या का संबंध सामान्य रूप से गरीबी एवं भूख मिटान की प्रक्रिया के साथ ही हैं। हमारे देश में यह समस्या अत्यन्त गंभीर है।

बालश्रम सदियों से चली आ रही शोषण–परम्परा की एक बड़ी कड़ी है। ओद्यौगीकरण के फलस्वरूप मालिक–मजदूर संबंधों का जो समीकरण बना, उसी का विस्तार है बालश्रम। बालश्रम जैसी गंभीर समस्या को गरीबी, अज्ञानता, रूढ़िवादिता और मक्कारी ने ही बढ़ावा देकर मानव अधिकारों की अवहेलना कर सरेआम मजाक बना दिया है। कितने दुःख एवं निराशा की बात है कि जिन नौनिहालों के जो खेलने–खाने, पढ़ने–लिखने एवं भविष्य के आधार के दिन होते हैं, उन्हें इन्ही दिनों में विषय एवं दयनीय परिस्थितियों में कई बार तो भूखे–प्यासे या आधे पेट रहकर 12 से 14 घण्टे तक कार्य करने को मजबूर होना पड़ता है। इसके साथ ही उन्हें अपने निर्दयी मालिकों की शारीरिक, मानसिक एवं लैंगिक यातना का शिकार होना पड़ता है। जिन बच्चों को विकास प्रक्रिया से गुजरते हुये एक अच्छा नागरिक बनने के लिये प्रेरणा चाहिए, वे हमारे खेतों, लघु कुटीर उद्योग, कारखानों, साहब के घरों में फर्श व गाड़ी साफ करने के साथ ढाबों में झूंठी प्लेटें धोते, जूतों में पॉलिश करते वं खिलौने, फल व अखबार बेचते हुये सरेआम देखे जा सकते है। आश्चर्य है कि यह सब तब भी जारी है, जबकि बालश्रम एक कानूनी अपराध भी है। इसके साथ ही राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक बाल दिवस मनाये जाते है।

एक अबोध की विवशता के कारण उसकी इच्छाओं का गला ही नहीं छुटता है, बल्कि उसका बचपन श्रम की दहकती भट्ठी में गल जाता हैं। आखिर ऐसी स्थिति मानवीय मूल्यों के प्रति राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जागरूकता के बावजूद क्यों बनी हुई है? इसके मूल में कहीं गरीबी एक प्रमुख कारण के रूप में दिखायी देती है और कहीं यह गरीबी के मूल में नजर आती है। बालश्रम के लिये जहां एक ओर उनके अभिभावक उत्तरदायी हैं, वहां दूसरी ओर उत्पादकों व नियोक्ताओं के निजी स्वार्थ और उसकी लाभ कमाने की लालसा भी जिम्मेदार है। बालश्रम के पीछे गरीबी ही मुख्य कारण है, किन्तु इस मामले का सबसे दुखद पहलू यह है कि विकसित देशों द्वारा बालश्रम को रोकने के उद्देश्य से बच्चों द्वारा बनायी गयी, वस्तुओं का बहिष्कार कर देने से समस्या के निदान में कोई सहायता नहीं मिली है। अलबत्ता यह समस्या और उलझ गयी है। अतः इस समस्या को गंभीरता से समझने की जरूरत है।

नई सहस्राब्दी में दुनिया के प्रवेश के बावजूद अभी भी विश्व के 25 करोड़ बच्चे काम करने को मजबूर हैं, जबकि उन्हें वास्तव में किसी विद्यालय या खेलकूद के मैदान में होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अध्ययन के अनुसार विश्व में 5 से 12 वर्ष की आयु वर्ग के लगभग 12 करोड़ बच्चे नियमित मजदूरी करते हैं, जबकि 13 करोड़ अन्य बच्चे अंशकालिक मजदूरी करने को मजबूर हैं। रिपोर्ट के अनुसार विश्व के बालश्रमिकों में से कम से कम आधे दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया में है और इन देशों में भी भारत में बालश्रमिकों की संख्या सर्वाधिक है। इस पूरे विश्व में 25 करोड़ बालश्रमिक हैं, जिनमें से 6 करोड़ से अधिक अकेले भारत में हैं, विश्व के 15 करोड़ बाल श्रमिक आज भी बंधुओं मजदूर बने हुये हैं। सेण्टर फॉर ऑफ चाइल्ड लेबर नाम संगठन द्वारा कराये गये एक सर्वेक्षण के आधार पर इस समय भारत में बाल मजदूरों की सं0 10 करोड़ से अधिक है और भारतीय श्रम मंत्रालय द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के कुल 30 करोड़ बच्चे में से हर सातवां बच्चा मजदूरी करता है। इस समय हमारे देश में सर्वाधिक बालश्रमिक आंध्रप्रदेश में हैं। इनमें से 90 प्रतिशत बालश्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों के कृषि आदि व्यवसायों में लगें है।

विश्व बैंक ही हाल में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार पूरे एशिया महाद्वीप के देशों में बाल मजदूरो की संख्या पन्द्रह करोड़ है। रिपोर्ट में जानकारी दी गयी है कि ये बच्चे बाल वेश्यावृत्ति से लेकर खतरनाक उद्योगों में झोक दिये गये है। गैर सरकारी संस्था फ्री द चाइल्ड इंण्डिया के प्रमुख स्वप्न मुखर्जी कहते हैं– बंगाल में बच्चो की तस्करी का धंधा खूब चल रहा है। बच्चों से तस्करी कराने से लेकर खतरनाक उद्योगों में मजदूरी जैसे काम

कराये जाते हैं। 'पाकिस्तान में भी बच्चो की स्थिति अच्छी नहीं है। वहां के एक बाल अधिकार संगठन के मुताविक कर्ज चुकाने में असमर्थ मां–बाप अक्सर अपनी संतान को रेहन के रूप में साहूकारों के पास छोड़ देते हैं, जहां उनसे जमकर काम लिया जाता है। वहां पांच साल तक के छोटे बच्चों का स्यालकोट की अंधेरी दमघोटूं फैक्ट्रियो में फुटबाल सिलते देखा जा सकता है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई0एल0ओ0) बाल मजदूरी के उन्मूलन के लिये लगातार प्रयासरत है। इसके लिये आई0एल0ओ0 ने समझौते का एक मसौदा बनाया है, जिस पर काफी देशों ने दस्तखत किये हैं। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई0एल0ओ0) खासतौर पर बाल मजदूरी के उन रूपों को लेकर चिंतित है, तो बच्चों को रेहन पर रखना, युद्ध में बच्चों को सैनिक कार्यों के लिये इस्तेमाल, नशीली दवा या वस्तुओं या अश्लील फिल्में बनाने के लिये इस्तेमाल नशीली दवा या वस्तुओं की तस्करी में उन्हें लगाना तथा खतरनाक कामों में उनका इस्तेमाल शामिल है। यहां पर यह भी उल्लेखनीय है कि अफ्रिका के पूर्वी तट स्थित देश–सेसल्स ने सबसे पहले इस समझौते पर दस्तखत किये। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सभी 174 सदस्य देशों ने, जिनमें भारत शामिल है, एक राय से जिनेवा में हुई वार्षिक बैठक में इस प्रस्ताव को मंजूरी दी थी। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अध्यक्ष जुआन सोमाविया ने बैठक में बताया कि किसी तरह बच्चे खानों में काम करते हैं? उनसे किस तरह वेश्यावृत्ति कराई जाती है और किस तरह खतरनाक काम उनसे कराए जाते है।

बाल मजदूरी अधिनियम, 1986 के अनसुार एक बच्चे की परिभाषा है– 'वह जो 14 साल से कम उम्र का हो' इस प्रकार किसी उद्योग, कारखानों या खान इत्यादि में मानसिक या शारीरिक श्रम करने वाले 14 वर्ष से कम आयु के श्रमिक, बालश्रमिकों की श्रेणी में आते है। वर्तमान में भारत से प्राप्त आंकडों के अनुसार, शिवकाशी (तमिलनाडु) माचिस उद्योग में 50 से 80 हजार मरकापुर (आंध्रप्रदेश) के पत्थर तथा खदान उद्योग में 30 हाजर, मध्यप्रदेश और मेघालय की खदानों में 28 हजार, केरल के मत्स्य उद्योग में ड़ेढ लाख, फिरोजाबाद के कांच उद्योग में 50 हजार, खुर्जा के चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग में 50 हजार, जयपुर के रत्न पॉलिश उद्योग में 15 हजार, वाराणसी के सिल्क उद्योग में 50 हजार लखनऊ के चिकन–जरदोजी उद्योग में सर्वाधिक साढ़े तीन लाग लगभग बालश्रमिक काम करते हैं। अभी तक विभिन्न स्थानों पर जूता पॉलिश करने वाले, ढाबे–होटलों मे काम करने वाले तथा भीख मांगने वाले बच्चों की संख्या के आकंड़े, उपलब्ध नहीं हो सके हैं। इसके अलावा एक गैर सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 43 प्रतिशत बालश्रमिक कृषि कार्यों से जुड़ें हैं, जिनमें अधिकाश बंधुआ मजदूर है।

सेंटर ऑफ कन्सर्न फॉर चाइल्ड लेबर ने केन्द्रीय श्रम तथा मानव संसाधन मंत्रालय को सौंपी अपनी रिपोर्ट में यह रहस्योद्घाटन किया है। बाल मजदूरी, शिक्षा एवं पुनर्वास शीर्षक की इस रिपोर्ट में कहा गया है। कि गैर सरकारी संगठनों के अनुसार बाल मजदूरों की सं0 इससे भी अधिक है। इसमें कहा गया है कि सरकार ने 1995 में देश खतरनाक उद्योगों में कार्यरत करीब 20 करीब बच्चों की सन् 2000 तक पुनर्वास करने का लक्ष्य निर्धारित किया था, लेकिन अब तक मात्र चार लाख बच्चों को ही सरकारी एवं गैर सरकारी कार्यक्रमों, में शामिल किया जा सका है।

सन् 1987 में राष्ट्रीय बाल श्रम नीति घोषित होने के बावजूद काम से छुड़ाए गए बाल मजदूरों के पुनार्वास की कोई ठोस नीति नहीं बन पाई है और न ही 1996 में उच्चतम न्यायालय द्वार बाल मजदूरी संबंधी फैसले पर भी पिछले चार सालों में कोई ठोस अमल नहीं किया गया। रिपोर्ट में सुझाया गया है कि केन्द्र सरकार विभिन्न राज्य सरकारों, स्वैच्छिक संगठनों के प्रतिनिधियों, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग एवं अन्य विशेषज्ञों की एक समिति बनाकर बाल मजदूरी संबंधी पुनर्वास नीति बनाने में पहल करें। स्पष्ट रूप से इस रिपोर्ट में कहा गया है जून 1999 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई0एल0ओ0) द्वारा घातक बाल मजदूरी के उन्मलून पर नया प्रस्ताव पारित किये जाने के बाद देश में बाल मजदूरी की पुनर्वास नीति की दिशा में तुरंत आवश्यक कदम उठाये जाने की आवश्यकता है। भारत सरकार ने इस प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया था।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के इस मसविदे के अनुसार यौन उत्पीड़न के शिकार घरेलू मजदूर, बच्चियों, अश्लील सामग्री निर्माण में लगाए जाने वाले बच्चे, मादकं द्रव्य पदार्थों का पुनर्वास करना सभी देशों की प्राथमिकता होगी। जाहिर है कि ऐसे में एक प्रभावशाली बाल पुरर्वास नीति की अत्यंत आवश्यकता है। देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने हेतु भारत सरकार को 62वें संविधान संशोधन को संसद के आगामी सत्र में लाने का सुझाव देते हुये रिपोर्ट में इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है कि स्कूल जाने की उम्र के ग्यारह करोड़ बच्चों ने स्कूल का मुंह देखा है। इसमें लगभग 60 प्रतिशत बच्चे बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश जैसे उत्तरी राज्यों में हैं। हिंदी भाषी राज्यों में 6–14 वर्ष के आयु समुह के बच्चों की अपेक्षा ने सिर्फ शिक्षा का प्रतिशत कम है, वरन् उनमें स्कूल छोड़ने का प्रतिशत भी अधिक है। रिपोर्ट के अनुसार देश में अनुसूचित जाति की आबादी 15 प्रतिशत है, लेकिन इस वर्ग के बच्चो का स्कूल भर्ती प्रतिशत महज 11 प्रतिशत है। इसी तरह अनुसूचित जनजाति की आबादी 8प्रतिशत हैं, लेकिन भर्ती प्रतिशत महज 5 है। माध्यमिक स्तर पर तो स्थिति और भी खराब है। देश के 54 प्रतिशत दलित बच्चे एवं 22 प्रतिशत आदिवासी बच्चे प्राथिमिक शिक्षा की पहुंच से बाहर हैं।

मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल झाबुला जिले में अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद बालश्रमिकों की तादाद देश के अन्य जिलों में सबसे ज्यादा है। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट द्वारा तैयार हाल में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार देश के सबसे अधिक बालश्रमिक 17 प्रतिशत झाबुआ जिले में है। सबसे कम बालश्रमिक लक्ष्यद्वीप में है, जिनका प्रतिशत 0.13 है।

ग्रामीण विकास रिपोर्ट 1999 के नाम से जारी इस प्रतिवेदन के अनुसार बालश्रमिकों की संख्या के मामले में कर्नाटक का बेल्लारी 14.5 प्रतिशत और आंध्रप्रदेश का

महबूबनगर जिला 14.1 प्रतिशत क्रमशः दूसरे व तीसरे स्थान पर है। मध्य प्रदेश में सबसे कम बालश्रमिक विलासपुर जिले में पाये गये है, जिनका प्रतिशत 1.3 है। रिपोर्ट ने वर्ष 1991 की जनगणना के हवाले से बताया है कि बालश्रमिकों की अधिवक्ता वाले जिले साक्षरता विशेष रूप से महिला साक्षरता के क्षेत्र में काफी पिछड़े हैं ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदेश स्तर पर महिला साक्षरता के प्रतिशत 19.7 तुलना में झाबुआ जिले में यह प्रतिशत मात्र 7.8 प्रतिशत है। झाबुआ में महिला साक्षरता कल 11.5 प्रतिशत है। पुरूष और महिला साक्षरता में 14.8 का फर्क भी इस जिले में साक्षरता की स्थिति को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। झाबुओं जिलें में प्रजनन दर 5.7 है जो कि राज्य की औसत 4.2 और राष्ट्र की औसम प्रजनन दर 3.5 से अधिक है। जिले में राज्य की 1.71 प्रतिशत जनता निवास करती है। झाबुओ का मानव विकास सूचकांक और लिंग संबंधी विकास सूचकांक क्रमशः 0.356 और 0.521 है। जिले में लगभग 1341 गांवों में बुनियादी सुविधाओं की स्थिति निराशजनक है। 67.1 प्रतिशत घरों में बिजली की व्यवस्था नहीं तथा 36 प्रतिशत निवासियों को स्वच्छ पेयजल भी मुहैया नहीं हो पा रहा है।

अधिकारिक सूत्रों के अनुसार मध्य प्रदेश में औसत पुरूष बालश्रमिकों की संख्या सात प्रतिशत और महिलाश्रमिकों की संख्या पांच प्रतिशत है। राज्य सरकार ने राष्ट्रीय बालश्रमिक पुनर्वास कार्यक्रम के तहत झाबुआ सहित आठ जिलों में उन बच्चों के लिये विद्यालय खोलने के लिये केन्द्र से सहायता मांगी है, जो बच्चे स्कूल नही जा पाते, श्रमिक की गिनती में आते है। इसके अलावा आदिवासी क्षेत्रों में संसाधनों की कमी और मूलभूत सुविधाओं का अभाव भी बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुये है। बालश्रमिकों की संख्या में वृद्धि का मुख्य कारण निरक्षरता है। बच्चों को शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में पूरी तरह ध्यान नहीं देना भी इसका एक कारण है। जिन गरीब परिवारों में अधिक बच्चे हैं, उनके पास भी अस्तित्व बनाये रखने के लिये बच्चों को काम पर भेजने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाता है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा 10 दिसम्बर, 1996 को दिये गये फैसले के अनुसार राज्य सरकार को बालश्रमिकों की पहचान के लिये एक सर्वेक्षण करना पड़ा। वर्ष 1997 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार राज्य में 14 हजार नौ सौ से अधिक बालश्रमिक है, जिनमें से 11 हजार से अधिक खतरनाक उद्योगों में लगे हैं। राज्य सरकार ने इस बालश्रमिकों के कल्याण और पुर्नवास के लिये अनेक कदम उठाये है। श्रम राज्य मंत्री डोमन सिंह नागुरे ने विधान सभा में कहा था कि खतरनाक उद्योागें में लगे 9510 बालश्रमिकों के पुर्नवास कराया गया है, जिनमें सात हजार से अधिक बच्चे अब स्कूल जाने लगे हैं।

यह भी उल्लेखनीय है कि विगत कुछ वर्षों से देश की स्वेच्छिक संस्थाएं अंतर्राष्ट्रीय मजदूर दिवस यानी 1 मई को बाल मजदूरी के मुद्दे को लेकर धरना प्रदर्शन करने लगी हैं। इस समय देश के सभी प्रमुख मजदूर संगठन बाल मजदूरी उन्मूलन के क्षेत्र में कोई न कोई कार्यक्रम चला रहें है। वर्ष 1999 में राष्ट्र संघ के बाल अधिकार चार्टर ने 10 वर्ष पूरे किये एवं चार वर्ष पहले भारतीय संविधान की 50 वीं वर्षगाठ मनायी गयी ।इन सबके बावजूद बाल–मजदूरी कम होने के कोई आसार नजर नहीं आते हैं। दुनिया में भारत ही ऐसा देश है, जहां बालश्रम पनप रहा है। यद्यपि यह समस्या अनेक एशियाई, अफ्रीका एवं लेटिन अमरीकी देशों में भी मौजूद हैं। अनुमान है कि विश्व के 25 करोड़ बाल मजदूरों का 61 प्रतिशत (15.3 करोड़) एशिया में है। अफ्रीका में 32 प्रतिशत (9 करोड़) तथा लातिन अमेरिका में 7 प्रतिशत में 7 प्रतिशत (एक करोड़ 75 लाख) अर्थात् बाल मजदूरी पूरे विश्व की एक बड़ी समस्या है। फिर ऐसी क्या खासियत है कि भारत में मौजूदा बाल मजदूरी को अंतर्राष्ट्रीय वं राष्ट्रीय विश्लेषण में अब एक गंभीर समस्या के रूप में देखा जाने लगा है।

निःसंदेह चिंताजनक बात यह भी है कि पिछले दशक में खतरनाक उद्योगों में बाल मजदूरों की संख्या में सिर्फ बढ़ोत्तरी हुई हैं, वरन् काम पर जाने की औसत आयु में भी कमी आयी है। उदाहरण के लिये देश की राजधानी को ही ले लीजिए। वी0वी0गिरी राष्ट्रीय श्रम संस्थान के एक अध्ययन के अनुसार दिल्ली में करीब चार लाख मजदूर–यानी दिल्ली के बच्चों की कुल आबादी 18 प्रतिशत हैं। इनमें से 30 हजार बच्चे चाय की दुकानों और ढाबो पर काम करते हैं। लगभग 20 हजार कार मरम्मत की दुकानों में काम करते है। लगभग 40 हजार कुलीगीरी या मजदूरी करते है और लगभग एक लाख घरेलू बच्चे नौकरी बनकर डांट–डपट और भय के वातावरण में काम कर अपना बचपन गुजार रहे हैं। इन चार लाख बच्चों में से सिर्फ नौ प्रतिशत भिखारी हैं। इन बाल मजदूरों में से 50 प्रतिशत तक बच्चे ऐसे हैं। जो अभी भी अपने दिल में पढ़ाई की आस संजोए हुये हैं। भारत के कुल बाल मजदूरों में दलित एवं आदिवासी पृष्टभूमि के बच्चों का प्रतिशत क्रमशः 21, 82 एवं 16.7 है। यानी देश के सम्पूर्ण बाल मजदूरों में दलित–आदिवासी बच्चों की भागीदारी लगभग 38 प्रतिशत है। यह आंकड़े इसलिये महत्वपूर्ण है, कि सामाजिक न्याय का जो सपना संविधान निर्माता के दिलो–दिमाग में था कोसो दूर हैं। भारत में कुल बच्चो की संख्या 6.2 प्रतिशत बाल मजदूर हैं। लेकिन दलित वर्ग में यह प्रतिशत 7.22 एवं आदिवासियों में 12.12 प्रतिशत है। कटु सच्चाई यह है कि आजाद भारत में आज भी आदिवासी बच्चों को विकास के पूरे अवसर नहीं मिल सके हैं।

वास्तव में ऐसा नहीं है कि आजादी के बाद देश में बाल मजदूरी की समस्या अचानक पैदा हो गयी है। सन् 1947 के पूर्व भी बाल मजदूरी की समस्या मौजूद थी, लेकिन उसका स्वरूप इतना भयावह नहीं था। उस समय ठोस कदम उठाये जाते, तो आज यह दिन देखने को नहीं मिलता। बाल मजदूरी की समस्या का हल करने की दिशा में पहला ठोस कदम 1987 में राष्ट्रीय बाल श्रम नीति घोषणा के साथ उठा यानी आजादी के 37 वर्ष बाद। वस्तुतः आजादी से पूर्व एवं उसके बाद भी भारतीय जनमानस इस आसमंजस का शिकार रहा है कि बाल श्रम को पूर्णतः प्रतिबन्धित किया जाये या 'सामाजिक यथार्थ' के रहते उसे मानवीय बनाया जाये। इस ऊहापोह के चलते 1987 का बालश्रम निषेध एवं विनयमन कानून बना

जो हमारी सामाजिक मानसिकता या द्योतक है कि कानूनों का पालन इस पर निर्भर करता है कि उस समस्या के बारे में समाज क्या नजरिया रखता है। यदि किसी कानून के बारे में नीति निर्धारकों एवं आम जनता के नजरिए में अंतर है, तो उस कूानन को लागू करवाने में कठिनाई होगी। ऐतिहासिक अध्ययनों के आधार पर कहा जा सकता है कि संगठित क्षेत्र में जैसे–जैसे मजदूरो के उचित वेतनमान एवं सुविधाओं के कानून बनते गये वैसे–वैसे कई चीजों का उत्पादन संगठित क्षेत्र से हटकर कुटीर उद्योग एवं गृह उद्योग के नाम पर असंगठित क्षेत्र में चला गया।

बाल मजदूरी समस्या से निपटने के प्रयासों को तीन क्षेणियों में रखा जा सकता है– कानूनों, विशेष परियोजना एवं विकास को गति देना। इनमें से विशेष परियोजना वाले मामले में कुछ प्रगति नजर आती है। केन्द्रीय सरकार द्वारा 1986 में 10 विशेष परियोजना चलायी गयी, जिनका लक्ष्य तीस हजार बाल मजदूरो को शिक्षा एवं स्वास्थ्य का लाभ पहुंचाना था। वर्ष 1995 में केंन्द्रीय सरकार ने घोषणा की कि खतरनाक कामों में लगे बीस लाख बच्चों को वहां से हटकर पुनर्वासित किया जाएगा एवं 15000 विशेष स्कूल खोले जायेंगे। इसके लिये 680 करोड़ रूपयें का प्रावधान रखा गया था। अब तक इन सब परियोजनाओं का लाभ महज दो लाख बच्चों तक ही पहुंचा है। दरअसल में श्रम मंत्रालय में नीचे स्तर पर भ्रष्टाचार का बोलबाला हैं, जिसके चलते ईमानदार उच्च अधिकारी भी बेअसर साबित हो रहे हैं। अलबत्ता 1994 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आइपेक कार्यक्रम के बाद बाल मजदूरों संबंधी कार्यक्रमों से देश के लगभग सवा लाख बच्चे प्रभावित हुए। इस तरह पंद्रह वर्षों में अनेक परियोजना के बावजूद बहुत कम बाल श्रमिक वास्तव में लाभान्वित हुये हैं।

सही अर्थों में बाल–मजदूरी की प्रभावी ढंग से रोकने के लिय राष्ट्रीय नीति की आवश्यकता है। क्या वर्तमान सरकार एवं राजनीतिक दल इस दिशा में पहल करेगी? यह एक गंभीर प्रश्न है। बालश्रम को रोकने के साथ ही निरक्षता, गरीबी जनसंख्या वृद्धि एवं बेरोजगार जैसी भयानक समस्याओं का भी साथ ही समाधान करना आवश्यक है। मानव अधिकार के लागू होने के पांच दशक व्यतीत हो जाने के साथ ही जेनेवा घोषणा, संयुक्त राष्ट्र संघ को निर्णय, भारत सरकार की बाल–नीति तय होने तथा कानून बन जाने के बावजूद हमारी सरकार व समाज उपेक्षित बचपन एवं बलश्रम के प्रति उदासीन हैं। मानव अधिकार आयोग के साथ ही सोये हुए समाज को भी जागरूक एवं चैतन्य होना पड़ेगा। निरन्तर योजना, कल्याणकारी कार्यक्रमों, विधि–निर्माण एवं प्रशासनिक प्रक्रिया के उपरांत भी भारत को संसार के कार्यरत बच्चों (बालश्रम) की सबसे अधिक संख्या होने के संदिग्ध प्रतिष्ठा प्राप्त है। अधिकांश परिवारों में माता–पिता उनकी उपेक्षा करते है। इस बात को गंभीरता से चिन्तन करने की जरूरत है।

अध्ययन का उद्देश्य

बाल श्रम आज समाज में एक अभिषाप बना हुआ है। प्रस्तुत लेख के माध्यम से लेखिका समाज में व्याप्त इस अभिषाप पर एक प्रहार करना चाह रही है कि जब सभी व्यक्तियों को समाज में स्वतन्त्र रहने का अधिकार है तो छोटे बच्चों से श्रम कराकर उनकी बाल अवस्था को क्यों खराब किया जाता है साथ ही जहाँ हम इस कुप्रथा को देखें वहीं पर संस्था को सूचित कर इस अपराध पर लगाम लगाने का प्रयास करें।

निष्कर्ष

निःसंदेह बच्चे राष्ट्र की एक बड़ी सम्पत्ति और भविष्य के कर्णधार हैं। अतः मानव अधिकार आयोग की स्थापना को वास्तविक स्वरूप प्रदान करने हेतु प्रत्येक राष्ट्र का पहला कर्तव्य है कि अपनी इस बड़ी सम्पत्ति की सुरक्षा एवं विकास को प्राथमिकता प्रदान करे। बालश्रमिक बनने को बाध्य होने की जो स्थितियां और परिस्थितिया है या हो सकती है, उन्हें यथाशीध्र दूर करने के प्रयास करने होंगे। यदि इस ओर तत्काल ध्यान नहीं दिया, तो बाल–श्रमिकों के रूप में मानवता तो कलंकित होती रहेगी, हमारा भविष्य भी खतरे में पड़ जायेगा। यद्यपि यह बात हम सब अच्छी जानते है कि बाल–श्रम का जो सिलसिला जारी है, बुरी बात है और अवैध है। संयुक्त के चार्टर, यूनेस्कों, यूनिसेफ, अन्तर्राष्ट्रीय वं राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, संविधान के अनुच्छेद नीति निर्देशक सिद्धांत मौलिक कानूनी एवं नैतिक अपराध है। इसके बाबजूद हमारे देश में बालश्रम की संख्या सर्वाधिक है। यह सरकार एवं राष्ट्रीय मानव अधिकार के लिये जहां एक बड़ी चुनौती के रूप में हैं, वहीं हमारे समाज के लिये एक घातक एवं शर्मनाम पहलू भी है। अतः इस गंभीर मामले को मानवीय दृष्टिकोण के साथ ही भविष्य की एक बड़ी निधि के रूप में समझना होगा, ताकि इस सत्य संकट को समय रहते विराम दिया जा सकें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *किश्वर, मधु एवं रूथ वनता (सं0) इन सर्च ऑफ आन्सर्स' (2005),*
2. *काबरा, विजेन्द्र रू सेंसस एण्ड फीमेल एण्ड चाइल्ड लेबर इन इण्डिया,*
3. *केसा फार चिल्ड्रेन्स राइट इन सार्क 'दी टाइम्स आफ इण्डिया' अक्टूबर 26, 2010*
4. *त्रिपाठी, एस के : चाइल्ड लेबर इन इण्डिया, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 2011*